संस्कृत साहित्य सौरभ
नागानंद

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

६

हर्ष-कृत

नागानंद

●

श्री हरदयालुसिंह
द्वारा
कथा-सार

●

विष्णु प्रभाकर
द्वारा
सम्पादित

●

१९५६

सत्साहित्य-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली
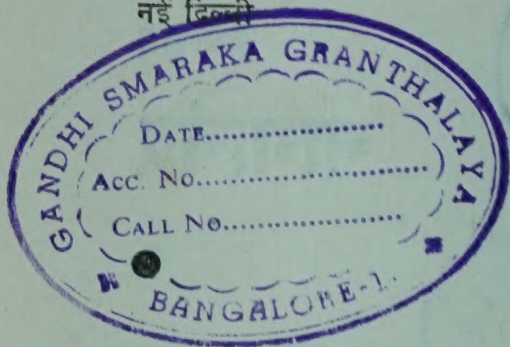
दूसरी बार : १९५६
मूल्य
छः आना

मुद्रक
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस,
दिल्ली
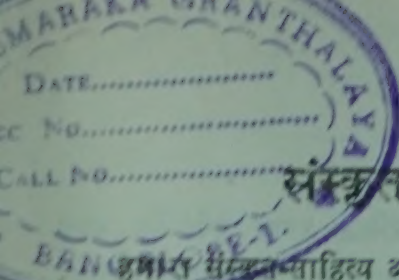
संस्कृत-साहित्य-सौरभ

हमारा संस्कृत-साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। भारतीय जीवन का शायद ही कोई ऐसा अंग हो जिसके सम्बन्ध में मूल्यवान सामग्री का अनन्त भंडार संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध न हो। लेकिन खेद की बात है कि संस्कृत से अपरिचित होने के कारण हिन्दी के अधिकांश पाठक उससे अनभिज्ञ हैं। उनमें जिज्ञासा है कि वे उस साहित्य से परिचय प्राप्त करें, परन्तु उसका रस वे हिन्दी के द्वारा लेना चाहते हैं।

पाठकों की इसी जिज्ञासा को देखकर संस्कृत के महाकवियों, नाटककारों आदि की प्रमुख रचनाओं को छोटी-छोटी कथाओं के रूप में हम हिन्दी में प्रस्तुत कर रहे हैं।

पुस्तकों की भाषा बहुत सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए टाइप भी मोटा लगाया है।

इन पुस्तकों का सम्पादन हिन्दी के सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने बड़े परिश्रम से किया है।

इस माला में कई पुस्तकें निकल चुकी हैं और आगे निकल रही हैं। आशा है, हिन्दी के पाठकों को इन पुस्तकों से संस्कृत-साहित्य की महान रचनाओं की कुछ-न-कुछ झांकी अवश्य मिल जायगी। पूरा रसास्वादन तो मूल ग्रंथ पढ़कर ही हो सकेगा। यदि इन पुस्तकों के अध्ययन से मूल पुस्तकें पढ़ने की प्रेरणा हुई तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

दूसरा संस्करण

इस माला की पुस्तकें बहुत ही लोकप्रिय हो रही हैं और हमें हर्ष है कि कुछ पुस्तकों का चन्द महीनों में दूसरा संस्करण प्रकाशित हो रहा है। आशा है कि भारतीय संस्कृति और साहित्य के प्रेमी पाठक इन पुस्तकों को और भी चाव से अपनावेंगे।

—मंत्री

भूमिका

'नागानन्द' के लेखक हर्ष भारत के प्रसिद्ध राजा हर्षवर्धन माने जाते हैं। इनके लिखे तीन ग्रन्थ मिलते हैं–रत्नावली, नागानन्द और प्रियदर्शिका। बहुत-से लोगों का विचार था कि राजा हर्षवर्धन ने स्वयं नाटक नहीं लिखे, बल्कि अपने दरबार में रहनेवालों से लिखवाये थे, नाम अपना दे दिया। लेकिन विद्वानों ने इस बात को अब गलत सिद्ध कर दिया है। नागानन्द के बारे में तो प्रसिद्ध चीनी यात्री इत्सिंग ने साफ लिखा है–"राजा शिलादित्य (हर्ष) ने बोधिसत्व जीमूतवाहन की आख्यायिका को नाटक के रूप में परिणत किया और उस नाटक का संगीत-सामग्री के साथ नटों के द्वारा अभिनय कराया।" इसके अलावा उनके कवि बाणभट्ट नें भी कई जगह महाराज हर्ष की काव्य-रचना की प्रशंसा की है। इन बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि महाराज हर्ष कवि थे और उन्होंने नागानन्द की रचना की थी।

नागानन्द में बुद्ध की स्तुति की गई है। इससे जान पड़ता है कि वह बुद्ध-धर्म के उपासक थे, लेकिन इतिहासकार जानते हैं कि वह बुद्ध, सूर्य, विष्णु और शिव सभीको मानते थे। ब्राह्मणों और बौद्धों को समान रूप से दान देते थे। सन् ६०६ में गद्दी पर बैठे और ६४८ में स्वर्ग सिधारे। वह वीर ही नहीं थे, ललित कलाओं से भी उन्हें बहुत प्रेम था। दान देने में तो बहुत ही बढ़े हुए थे। भारत के अन्तिम हिन्दू सम्राट् थे।

'नागानन्द' में उन्होंने एक आदर्श परोपकारी नायक की सृष्टि की हैं, जो पिता की सेवा के लिए राज छोड़ देता है और नागों की रक्षा के लिए प्राण अर्पण कर देता है। हर्ष स्वयं जितने चरित्रवान और उदार थे, जीमूतवाहन भी वैसा ही है। सारी कथा एक साथ बड़ी करुण और उदात्त है। धैर्य, क्षमा, विनय, करुणा, दानशीलता और बलिदान आदि गुणों से यह नाटक भरा हुआ है।

महाकवि बाणभट्ट ने 'हर्ष चरित' में इन्हीं महाराज हर्ष का चरित्र लिखा है।

—सम्पादक

ना गा नं द

: १ :

पुराने समय में विद्याधरों में एक राजा थे। उनका नाम जीमूतकेतु था। बूढ़े होने पर उन्होंने राज्य का भार अपने पुत्र जीमूतवाहन को सौंप दिया और प्राचीन भारतीय परिपाटी के अनुसार जंगल में तपस्या करने चल गये। वहाँ जाकर उन्होंने भगवान के ध्यान में मन लगाया ताकि इहलोक के समान परलोक में भी वह सुखपूर्वक जीवन बिता सकें।

जीमूतवाहन अपने पिता को बहुत प्रेम करते थे। उनके विचार भी बड़े ऊँचे थे। इसलिए जब उनके पिता वन चले गये तो उनका मन भी राज-काज में नहीं लगा और वह भी उनकी सेवा के लिए वन में चले गये। जाते समय उनके मित्र आत्रेयी ने उन्हें बहुत समझाया। वह चाहता था कि कुमार वन जाने का विचार त्याग कर इच्छानुसार राजसुख भोगें। उसने कहा, "इस प्रकार राज्य छोड़कर जाना उचित नहीं है। मतंगदेव आपका पुराना वैरी है। राज्य को बिना राजा के पाकर वह कभी

भी आकर उपद्रव मचा सकता है । फिर प्रजा की रक्षा के लिए भी आपका प्रजा के बीच रहना जरूरी है ।" परन्तु जीमूतवाहन ने उसकी बातों पर ध्यान न दिया और वन को चले गये ।

एक दिन जीमूतकेतु ने कुमार से कहा, "मलय पर्वत पर किसी ऐसे स्थान की खोज करो जहाँ सब प्रकार की सुविधा हो । वहीं हम अपनी कुटी बनायंगे । बहुत दिन तक यहाँ रहने के कारण इस स्थान में समिधा और फलादि का अभाव हो गया है ।" पिता का आदेश मानकर जीमूत-वाहन ने अपने सखा आत्रेयी को साथ लिया और सुविधा-जनक स्थान की खोज में निकल पड़े । कुछ दूर जाने पर उन्होंने एक सुन्दर तपोवन देखा । उस प्रदेश के नयनाभिराम दृश्यों को देखकर वे दोनों चकित रह गए । कहीं हरियाली में मोर अपने पंख फैलाकर नाच रहे थे तो कहीं आम्र-वृक्ष की मंजरी से भरी डालियों पर कोयल कलगान कर रही थी । कहीं हिरन का बच्चा शेरनी का दूध पी रहा था तो कहीं व्याघ्र-शावक गाय का । कहीं शाखामृग नेत्रहीन वृद्ध तपस्वियों को हाथ पकड़कर रास्ता दिखा रहे थे तो कहीं यज्ञ के धुएँ और आँच के कारण पादपों के कोमल किसलय कुम्हला रहे थे ।

इस प्रकार वन-प्रदेश की अनोखी शोभा को देखते हुए और अपने योग्य स्थान की खोज करते हुए वे दोनों वहाँ विचरने लगे। सहसा आत्रेयी की दृष्टि मृगों के एक झुंड पर पड़ी। ऐसा जान पड़ता था जैसे तन्मय आनन्द-विभोर कान ऊपर उठाए वे कुछ सुन रहे हैं। इतने में जीमूतवाहन के कानों में वीणा की सुमधुर ध्वनि सुनाई पड़ी। वे उसी ओर चल पड़े। थोड़ी दूर जाने पर उन्हें एक देव-मन्दिर दिखाई दिया। पास जाने पर देखा कि देवांगना के समान एक सुन्दरी अपने इष्टदेव को प्रसन्न करने के लिए वीणावादन में तल्लीन है। जीमूतवाहन एकटक उधर देखते रह गए। पर तभी सहसा उन्होंने सोचा कि पराई स्त्री की ओर इस प्रकार देखना भला काम नहीं है। वह ठिठक गए, पर उनका मन उधर खिंचा ही जा रहा था। फिर भी बहुत प्रयत्न करके उन्होंने उस ओर से अपनी निगाह हटा ली। यह देखकर उनका साथी आत्रेयी बोला, "इसमें लज्जा या झिझक की क्या बात है? तुमने इसमें कोई अपराध नहीं किया है। यह तो स्वाभाविक ही है। इस बारे में अब अधिक विचार मत करो। चलो, पास ही के उस तमाल-निकुंज में बैठकर इन लोगों की बातचीत सुनें।"

इतना कहकर दोनों वहाँ से हटकर पास ही निकुंज

में बैठ गए और मन्दिर में होनेवाली बातचीत को ध्यान से सुनने लगे।

कुछ देर बाद जब राजकुमारी वीणा बजा चुकी तो उसकी सखी बोली, "कुमारी, जिसे तुम देवी मान बैठी हो और जिसको रिझाने के लिए इस प्रकार वीणा बजाकर अपनी अँगुलियों को थका रही हो, वह सच-मुच ही पत्थर की है। उसके हृदय नहीं प्रतीत होता, क्योंकि अबतक तुम्हारी प्रार्थना पर उसने कोई ध्यान नहीं दिया। अगर इसमें तनिक भी सहृदयता होती तो उसका पत्थर का दिल तुम्हारी आराधना से अवश्य ही पिघल जाता।"

सखी की ऐसी नास्तिकतापूर्ण बातें सुनकर राज-कुमारी को बहुत दुख हुआ। क्रुद्ध होकर वह बोली, "चतुरिका, भगवती गौरी की निन्दा मत कर। आज ही रात भगवती ने मुझसे स्वप्न में कहा था, 'कुमारी मलयवती, मैं तुम्हारी पूजा और वीणावादन से बड़ी प्रसन्न हूँ। मेरा आशीर्वाद है कि शीघ्र ही विद्याधरों के चक्रवर्त्ती राजा से तुम्हारा सम्बन्ध होगा और वह तुम्हारा पाणिग्रहण करेंगे'।"

राजकुमारी की ये बातें सुनकर उसकी सखी को बड़ी प्रसन्नता हुई। बोली, "यदि ऐसा है तब तो तुम्हें

मनचाहा वर मिला है।"

उधर तमाल-कुंज में बैठे हुए राजकुमार जीमूत-वाहन और उनके मित्र आत्रेयी ने यह संवाद सुनकर तय किया कि हम लोगों के प्रकट होने का यह बहुत अच्छा अवसर है। आत्रेयी ने कहा, "चलो, मन्दिर में चलकर दर्शन करें और सम्भव हो सके तो राजकन्या से वार्तालाप भी करते चलें।" अपने मित्र के अनुरोध को मानकर राजकुमार देवालय में पहुँचे। इनके वहाँ प्रवेश करते ही दोनों सखियाँ आश्चर्य से अवाक रह गईं। राजकुमारी ने सखी से पूछा, "यह कौन हैं?"

सखी बोली, "रूप-रंग से तो यह देवी का प्रसाद जान पड़ता है।" : :

बड़े प्रेम से तब राजकुमारी ने जीमूतवाहन को देखा, लेकिन लज्जा के कारण वह झिझक गई और सखी से कहीं और चलने को कहने लगी। इसपर आत्रेयी ने कहा, "हे राजकुमारी, क्या यही आप लोगों का शिष्टाचार है? अतिथि के आने पर मीठी वाणी से स्वागत करना भी आप लोग नहीं जानतीं क्या?"

यह सुनकर उनको अपनी गलती महसूस हुई और उन्होंने उनसे कुशासन पर बैठने की प्रार्थना की।

राजकुमार जीमूतवाहन और आत्रेयी बताये गए आसन पर बैठ गए। लेकिन उन लोगों की बातचीत आगे बढ़ती इससे पूर्व कुलपति कौशिक का भेजा एक ब्रह्मचारी वहाँ आया। उसे देखकर जीमूतवाहन और मलयवती आदि ने उसे प्रणाम किया। उसने मलयवती से कहा, "कुलपति कौशिक आपको शीघ्र बुला रहे हैं।"

कुलपति की आज्ञा मिलते ही राजकुमारी अपनी सखी के साथ आश्रम की ओर चली गई। उनके जाने पर जीमूतवाहन और आत्रेयी भी अपनी कुटिया की ओर वापस लौट चले।

: २ :

कौशिक मुनि की आज्ञा पाकर राजकुमारी मलयवती मन्दिर से लौट तो आई, परन्तु उसे ऐसा मालूम होने लगा मानो वह अपनी कोई निधि मन्दिर में छोड़ आई है और साथ ले आई है दुख का एक बहुत बड़ा पहाड़। ज्यों-ज्यों वह मंदिर की बात सोचती त्यों-त्यों उसका मन उदास होता जाता। राजकुमार की छवि आँखों के सामने मँडराती रहती। अपना मन बहलाने को वह सखी के साथ चन्दनलतागृह में चली गई और चन्द्रमणि की शीतल शिला पर लेट गई। पर वहाँ भी उसे चैन नहीं पड़ा।

यह देखकर उसकी सखी ने कहा, "राजकुमारी आपकी अस्वस्थता और बेचैनी का कारण मैं जानती हूँ। जो वर तुम्हारे हृदय में घर कर गया है वही तुम्हें यह सन्ताप दे रहा है।"

राजकुमारी बोली, "चतुरिका, तुम तो सचमुच चतुरिका हो ! मैंने जबसे उन राजकुमार को देखा है, मन मेरे काबू से बाहर हुआ जा रहा है।"

चतुरिका ने कहा, "इसमें इतनी परेशानी और दुख की क्या बात है ? वह वर भी तुम्हारे बिना सुखी न होगा। आप धीरज धरें। मैं जल्दी ही इसका उपाय करती हूँ।"

राजकुमारी बोली, "मुझे बड़ा दुख इस बात का है कि मैं उनका वचनों द्वारा भी सत्कार न कर सकी। वह मुझे अशिष्ट समझते होंगे।"

यह कहकर मलयवती रोने लगी।

उधर जीमूतवाहन की भी यही दशा थी। वह अपने मित्र से बोला, "आत्रेयी, मलयवती के स्वप्न और देवी के आशीर्वाद की बातें सुनकर मेरा मन बड़ा बेकाबू हुआ जा रहा है। मन में आता है कि आज उसी चन्दन-लता-गृह में जाकर विश्राम करें और हो सके तो गेरू

द्वारा मलयवती का कोई चित्र बनाकर मन को शांत करने का प्रयत्न करें।"

जीमूतवाहन की बात सुनकर आत्रेयी मलयाचल पर जाकर पाँच तरह के रंगों के पत्थर ले आया और दोनों चन्दनलतागृह की ओर चल दिए। वहां एक कोने में जीमूतवाहन ने एक शिलाखंड पर मलयवती का चित्र बनाना शुरू किया। अभी चित्र पूरा भी नहीं हुआ था कि वह उसे देखकर प्रसन्न होने लगा। आत्रेयी ने देखा तो बड़ा आश्चर्य हुआ कि जीमूतवाहन चित्रकला में भी कितना निपुण है।

मलयवती और चतुरिका ने उन्हें देख लिया था। वे रक्त-अशोक के पीछे छिपी हुईं उनकी बातों को सुन रही थीं। राजकुमार की बातों से मलयवती को लगा कि वह किसी स्त्री से प्रेम करते हैं और जब उसने राजकुमार को चित्र बनाते देखा तो वह ईर्ष्या से भर उठी। उसे विश्वास हो गया कि वह किसी और ही स्त्री के प्रेम में दीवाने हो रहे हैं। दूर से वह यह न जान सकी कि जीमूतवाहन उसीका चित्र बना रहे थे। वह निराश होकर आँसू बहाने लगी।

इधर राजकुमारी इस उधेड़-बुन में थी और उधर राजकुमार उसीका चित्र बनाने में व्यस्त थे। इतने में

राजकुमारी का भाई मित्रावसु जीमूतवाहन को खोजता हुआ वहाँ पहुँचा। उसे आते देखकर राजकुमार ने उस चित्र को केले के पत्तों से ढक दिया। मित्रावसु ने जीमूतवाहन से कहा, "मेरे पिताजी मेरी बहन मलयवती का विवाह आपके साथ करना चाहते हैं। मालूम हुआ है कि आप भी उसे चाहते हैं। बड़ी कृपा हो यदि आप अपनी स्वीकृति देकर हमें आभारी करें।"

यह सुनकर जीमूतवाहन ने कहा, "ऐसा कौन है जो इस सम्बन्ध की अभिलाषा न करे, परन्तु कहीं और लगे मन को वहाँ से हटाकर दूसरी जगह लगाना कठिन है। सो मैं आपकी प्रार्थना स्वीकार नहीं कर सकता।" यह सुनकर मलयवती मूर्च्छित हो गई, परन्तु आत्रेयी ने मित्रावसु से कहा, "कुमार परवश हैं। इनसे प्रार्थना करने से क्या लाभ? अच्छा हो कि आप यह प्रस्ताव राजकुमार के पिता महाराज जीमूतकेतु के सामने रखें।"

राजकुमार मित्रावसु उसकी यह सलाह मानकर महाराज जीमूतकेतु के पास उनकी पर्णकुटी की ओर चले गये। राजकुमारी मलयवती सचेत होकर अपने जीवन को कोसने लगी। उसकी यह आशंका दृढ़ हो गई कि जीमूतवाहन उसे नहीं, बल्कि किसी और स्त्री को

चाहते हैं। खिन्न होकर उसने अपनी सखी को मित्रावसु के पीछे यह जानने को भेज दिया कि वह जीमूतवाहन के पिता के पास जाते हैं या नहीं। राजकुमारी की आज्ञा पाकर चतुरिका मित्रावसु के पीछे-पीछे चली गई।

उसके जाने के बाद राजकुमारी के मन पर इस बात का बड़ा बुरा असर हुआ कि जीमूतवाहन ने उसके पिता का प्रस्ताव, जो कि स्वयं उसके भाई ने उनके सामने रखा, ठुकरा दिया। इसमें उसने अपने पिता, भाई और स्वयं अपना बड़ा भारी अपमान समझा। इस विचार से वह इतनी अभिभूत हो गई कि उसने लताओं का फंदा बनाकर अपने गले में डाल लिया और फांसी लगाकर मरने को तैयार हो गई। वह गौरी की मूर्ति से प्रार्थना करने लगी, "हे माता, आपने इस जन्म में तो मेरा मनोरथ पूरा नहीं किया। अब अगले जन्म में मेरी प्रार्थना अवश्य पूरी करना।"

उधर दासी कुछ दूर तो मित्रावसु के साथ गई, पर पीछे उसे खयाल आया कि वह राजकुमारी को अकेला छोड़े जा रही है। यह ठीक नहीं है। यह विचार आते ही वह वापस लौट आई। दूर से ही उसकी दृष्टि राजकुमारी पर पड़ी। उसने देखा राजकुमारी गले में लताओं का फंदा डालकर आत्म-हत्या की तैयारी कर रही है। वह

ऊँचे स्वर में चिल्ला उठी, "देखो-देखो, राजकुमारी विफल मनोरथ होने के कारण आत्महत्या करने जा रही हैं! कोई हो तो इनकी प्राण रक्षा करे।"

दासी की यह पुकार जीमूतवाहन के कानों में पड़ी। वह अपना चित्रांकन छोड़कर तुरन्त वहाँ पहुँचे और लताओं को तोड़कर मलयवती के गले का फंदा निकाल डाला। उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि यह वही राजकुमारी है, जिसका वह चित्र बना रहे थे।

जीमूतवाहन के यह पूछने पर कि फांसी लगाने का कारण क्या है चतुरिका ने सब बातें बता दीं। इसपर जीमूतवाहन मलयवती का हाथ पकड़कर शिला के पास ले गये। वहाँ मलयवती ने देखा कि राजकुमार जिस स्त्री का चित्र बना रहे थे वह और किसीका नहीं, बल्कि उसीका था। तब उसकी लज्जा और आनन्द का ठिकाना न रहा।

इतने में एक दासी ने आकर सूचना दी कि मित्रावसु महाराज जीमूतकेतु की पर्णशाला में गये थे। वहाँ उन्होंने महाराज के सामने जीमूतवाहन के साथ मलयवती के विवाह का प्रस्ताव रखा था। महाराज ने बड़ी प्रसन्नता से राजकुमारी को अपनी पुत्रवधू बनाना स्वीकार कर लिया है। आज ही विवाह होगा। इसलिए राजकुमारी

को शीघ्र राजभवन ले जाने की आज्ञा है।

तब प्रेम और लज्जा के साथ राजकुमार को देखती हुई मलयवती वहाँ से चली गई। जब कुछ देर बाद जीमूतवाहन आत्रेयी के साथ पर्णशाला लौटे तो उनके पिता ने भी मलयवती के साथ उनके विवाह-प्रस्ताव की बात कही। इस समाचार से सब जगह आनन्द-ही-आनन्द छा गया।

: ३ :

राजकुमार जीमूतवाहन और राजकुमारी मलयवती का विवाह सानन्द सम्पन्न हुआ। विवाह के बाद दोनों घूमते-घामते और आनन्द मनाते कुसुमाकर उद्यान में पहुँचे। इसी उद्यान में एक ओर विद्याधर-गण भी आनन्द-मग्न होकर विचर रहे थे। वे सब सुरापान में मस्त थे। उनमें से शेखरक नाम का एक विद्याधर शराब के नशे में ज्यादा चूर हो गया। वह अपनी स्त्री नवमालिका की खोज में था। अचानक कहीं से आत्रेयी उसकी पकड़ में आ गया। उसने स्त्रियों जैसा वेश बना रखा था। शेखरक ने समझा कि वही उसकी स्त्री नवमालिका है। वह उसे प्रसन्न करने के लिए पान खिलाने लगा। मदिरा की दुर्गन्ध के कारण आत्रेयी की नाक में दम आ गया। इसी

समय नवमालिका उधर आ गई, तब कहीं वहां शेखरक से आत्रेय का पीछा छूटा। वह भागकर जीमूतवाहन के पास चला गया। वहां से वे लोग तमाल-वाटिका में गये। कुछ देर आनन्द करके आत्रेय वहां से भी भाग गया। केवल मलयवती के साथ जीमूतवाहन वहां रह गए।

तभी मलयवती के भाई मित्रावसु ने आकर जीमूत-वाहन को सूचना दी, "मतंग ने तुम्हारे राज्य पर आक्रमण कर दिया है। इसलिए प्रजा की रक्षा का कोई-न-कोई प्रबन्ध करना चाहिए। आप मुझे आज्ञा दें। मैं उसे युद्ध में मार डालूंगा।"

यह सुनकर जीमूतवाहन थोड़ा विचार में तो पड़ा, पर विचलित नहीं हुआ। वह बोला, "लड़ाई करने से न जाने कितने निरीह प्राणियों का संहार करना होगा। इसी कारण राज्य-प्रबन्ध छोड़कर मैं वन में पिता की सेवा में समय बिता रहा हूं। सबसे अच्छा जीवन तो प्रेम और परोपकार-युक्त जीवन है। दूसरों की जान लेने की अपेक्षा किसीकी जान बचाने के लिए मुझे अपनी जान भी देनी पड़े तो उसके लिए भी मैं तैयार रहूंगा। पर तुच्छ राज्य के लिए अनेक प्राणियों का संहार करना मेरे विचार के प्रतिकूल है। अज्ञान, रागद्वेष आदि दुःखों के अतिरिक्त मैं और किसीको अपना शत्रु नहीं समझता।

इसलिए मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि आप भी इस युद्ध से अलग ही रहें।"

मित्रावसु पर इन बातों का विशेष असर नहीं हुआ। जीमूतवाहन उसे और समझाने के लिए भीतर ले गये।

: ४ :

एक रोज जीमूतवाहन मित्रावसु को लेकर समुद्र-तरंगों का आनन्द लेने समुद्र की ओर घूमने निकल पड़े। वह पर्वत-शिखर के समीपवाले मार्ग पर चल रहे थे। पर्वत की ओर देखते-देखते जीमूतवाहन की दृष्टि उसके श्वेत शिखरों पर पड़ी। उन्हें देख जीमूतवाहन को बड़ा कौतूहल हुआ, लेकिन मित्रावसु ने बताया कि ये मलयपर्वत के शिखर नहीं हैं, ये तो सांपों की अस्थियों के ढेर हैं। यह सुनकर उन्हें बड़ा शोक हुआ। उन्होंने मित्रावसु से इसका रहस्य पूछा।

मित्रावसु बोला, "गरुड़ और नाग जाति की स्वाभाविक शत्रुता चली आती है। नागों को कहीं अकेला-दुकेला देखा नहीं और गरुड़ ने उनका अन्त किया नहीं। नागों का इस कारण बाहर निकलना भारी हो गया था। गरुड़ का खुला सामना करना उनकी सामर्थ्य से बाहर की बात थी। अन्त में बहुत सोच-विचार कर

नागराज वासुकी ने गरुड़ से संधि कर ली। उन्होंने अपनी ओर से गरुड़ को यह आश्वासन दिया कि उनके आहार के लिए रोज एक नाग नियमित रूप से समुद्र-तट पर पहुँच जाया करेगा। बदले में गरुड़राज ने यह वचन दिया कि वह रास्ते चलते किसी भी नाग को नहीं छेड़ेंगे। इसमें नाग-जाति और गरुड़-जाति दोनों को लाभ था। तबसे पक्षिराज के आहार के लिए नित्यप्रति एक नाग आने लगा। इस प्रकार बहुत समय बीत गया। उन्हीं नागों की हड्डियों के ये ढेर हैं।"

यह कथा सुनकर दयालु हृदय जीमूतवाहन का दिल रो उठा। उसे नागराज वासुकी पर बड़ा क्रोध आया। वह कहने लगे, "राजा का काम है कि अपने आश्रितों की रक्षा करे और उसके उपाय सोचे। यह न करके वासुकी ने अत्याचारी से समझौता किया और अपने आश्रितों की इस प्रकार हत्या कराने में सहायक हुआ। ऐसे राजा को धिक्कार है। उसकी जगह मैं होता तो अपनी जान देकर आश्रितों की रक्षा का पूरा प्रयत्न करता! हाय, इनपर कैसी विपत्ति पड़ी है। क्या मैं अपना बलिदान देकर एक भी नाग की रक्षा कर सकता हूँ?"

यह बात हो ही रही थी कि विश्वावसु का एक अनु-चर राजकुमार मित्रावसु को बुलाने आया। पिता का संदेश पाकर मित्रावसु तुरन्त चला गया। जाते समय उसने

जीमूतवाहन को भी वहाँ ठहरने से मना किया, परन्तु जीमूतवाहन के दिमाग में तो विचारों का तांता लगा हुआ था। वह नाग-जाति की हत्या और गरुड़ के अत्याचारों की कथा के तारों में उलझे हुए थे। उनका दिल पीड़ितों के दुःखों से दुःखी हो रहा था। वह उस पर्वत-शिखर से उतरकर समुद्र-तट को देखने लगे।

मित्रावसु को गये अभी थोड़ी ही देर हुई थी कि एक आर्तस्वर जीमूतवाहन के कानों में पड़ा। उन्होंने ध्यान से सुना तो मालूम हुआ कि कोई वृद्धा करुण स्वर में विलाप कर रही है। उन्होंने सोचा कि किसी दुःखी स्त्री पर कोई कष्ट आ पड़ा है। वह उसी ओर चल पड़े जिस ओर से आवाज़ आ रही थी। वहाँ पहुँचने पर उन्होंने देखा कि एक वृद्धा स्त्री अपने जवान पुत्र को छाती से लगाकर विलाप कर रही है। एक राजपुरुष पास खड़ा है। वह एक वृक्ष की ओट में छिपकर उनकी बातें सुनने लगे। पता लगा कि आज वृद्धा के एकमात्र पुत्र शंखचूड़ की बारी गरुड़ के पास जाने की है। उस विधवा का यही एकमात्र सहारा था। विदा करते हुए वृद्धा का कलेजा मानो फटा जा रहा था और आंखों के आंसू थमते नहीं थे। बार-बार अपने कलेजे के टुकड़े को वह छाती से लगाती, उसके गालों पर हाथ फेरती और विलाप करती थी। शंखचूड़

माँ को बहुत धीरज दे रहा था पर वह बार-बार अचेत हो जाती थी। यह करुण दृश्य जीमूतवाहन से न देखा गया। उनका हृदय भर आया और वह वृद्धा को सान्त्वना देने के लिए सामने आकर बोले :

"माँ, इस प्रकार दुःखी न होओ। तुम्हारे बेटे की रक्षा का मैं प्रबन्ध करूँगा। तुम घबराओ मत। मैं विद्याधर हूं। आज गरुड़ के पास तुम्हारे बेटे की जगह मैं जाऊँगा।" इतना कहकर जीमूतवाहन ने चिह्न वाले दोनों लाल वस्त्र मांगे जिससे वह अपनेको गरुड़ के आगे भेंट कर सके। लेकिन वृद्धा ने उसकी बात स्वीकार नहीं की। शंखचूड़ को भी बड़ा अचरज हुआ। उसने अपने-जैसे छोटे व्यक्ति के लिए प्राण-नाश न करने की प्रार्थना की, परन्तु जीमूतवाहन ने कहा, "जो व्यक्ति परोपकार करना चाहता है उसके मार्ग में बाधा डालते हो ? लाओ, ये चिह्न मुझे दे दो !"

लेकिन शंखचूड़ ने उसकी बात स्वीकार नहीं की। गरुड़ के आने का समय जानकर उसने वह वस्त्र पहने और माता के साथ पास के गोवर्णेश्वर के दर्शन के लिए चला गया। निराश जीमूतवाहन वहीं खड़े रह गए।

उस दिन दिवाली का पावन पर्व था। घर-घर उत्सव मनाया जा रहा था। मलयवती की माता ने भी बूढ़े कंचुकी

के हाथ जीमूतवाहन के लिए लाल वस्त्रों का जोड़ा उपहार में भेजा। अपनी इच्छानुसार उपहार पाकर जीमूतवाहन बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने समझा कि मलयवती से मेरा विवाह होना सफल हो गया। कंचुकी को विदा करके उन्होंने उन वस्त्रों को धारण किया और अपने पूर्व निर्धारित कार्यक्रम को पूरा करने के लिए निकल पड़े। थोड़ी देर में वह उस स्थान पर पहुँच गये जहाँ पक्षिराज गरुड़ के आहार के लिए नाग लोग बैठा करते थे। शंखचूड़ अभी वहाँ नहीं पहुँचा था। वहाँ बैठकर जीमूतवाहन गरुड़ के आने की राह देखने लगे। उस समय उनका हृदय बड़ा हलका था। एक पीड़ित परिवार के दुख में सहायक होने और उसका दुःख दूर करने के कारण उनका मन अपार शांति अनुभव कर रहा था।

थोड़ी देर के बाद जब पक्षिराज गरुड़ के आने का समय हुआ तो प्रबल प्रभंजन के वेग से आकाश काँपने लगा। प्रलय का-सा दृश्य उपस्थित हो गया। गरुड़ की देह से निकलते हुए पिंगल-प्रकाश से दिग्मंडल प्रदीप्त हो उठा। गरुड़ क्या थे मानों पक्षधारी साक्षात् प्रहार रूप थे। बिजली की चमक के समान तड़पते हुए वहां आये और मांस के टुकड़े के समान जीमूतवाहन को अपनी चोंच में पकड़ लिया। राजकुमार जीमूतवाहन

के इस लोकोत्तर बलिदान को देखकर आकाश के देवता बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने उनपर फूलों की वर्षा की और उनका जयजयकार किया।

यह देखकर गरुड़ को बहुत विस्मय हुआ। उन्होंने जीमूतवाहन को देखकर सोचा कि अवश्य ही यह नागों की रक्षा करनेवाला श्रेष्ठ नाग है। आज यह नागों के खाने की मेरी अभिलाषा को दूर कर देगा।

यह सोचकर वह राजकुमार को मलयपर्वत के शिखर पर ले गये।

: ५ :

राजकुमार को पर्णशाला से गये जब बहुत देर हो गई तो उनके ससुर विश्वावसु बड़े चिन्तित हुए। देर तक राह देखते-देखते वह बहुत अधीर हो गये थे। उन्होंने अपने एक सेवक को जीमूतवाहन को खोजने भेजा। सेवक उनको खोजते-खोजते जीमूतकेतु के पास पहुँचे। जीमूतकेतु को जब यह पता चला कि राजकुमार अपनी ससुराल में नहीं है और वह वहां से समुद्र-दर्शन के लिए गया था तो उनका मन शंकित हो उठा। इतने में कोमल मांस और बालों के साथ एक चूड़ामणि आकाश से उनके चरणों पर गिरी। उसे देखकर जीमूतवाहन की

माता बड़ी दुःखी हुई। बोली, "यह तो मेरे बेटे की चूड़ामणि है।"

लेकिन सेवक ने बताया कि घबराने की कोई बात नहीं। यहाँ तो गरुड़ के खाये हुए नागों के सिर की मणियाँ इसी तरह गिरा करती हैं।

यह कहकर वह तो कुमार को खोजने अपने स्वामी के पास लौट गया। इतने ही में उन्होंने एक नाग को आर्तस्वर से विलाप करते हुए देखा। इन लोगों ने उससे रोने का कारण पूछा तो उसने बताया :

"मैं नाग-जाति का हूँ और मेरा नाम शंखचूड़ है। गरुड़ के आहार के लिए भेजे जाने की आज मेरी बारी थी। पर मेरी माता का विलाप और दुःख सुनकर एक अज्ञात कुल-शील-दीनवत्सल महानुभाव गरुड़ के पास मुझे न जाने देकर स्वयं चले गये। उन्होंने मुझ अभागे की रक्षा करके अपने प्राणों को संकट में डाल दिया।"

शंखचूड़ का कथन सुनकर राज-परिवार की चिन्ता और आशंका और भी बढ़ गई। उनके बाएँ अंग फड़कने लगे। वे समझ गए कि वह दयालु विद्याधर जीमूतवाहन ही है। तब शोक से व्याकुल वे तीनों मूर्छित हो गए। इनकी बातचीत से शंखचूड़ को पता चल गया कि जो महानुभाव उसके लिए प्राण-विसर्जन करने गये थे, वह

इनका ही पुत्र है। यह जान शंखचूड़ इस राज-परिवार के दुःख की वेदना से व्याकुल होने लगा। उसने उन्हें सचेत किया, पर वे तो फिर विलाप करने लगे। मलयवती ने वह चूड़ामणि लेकर जल मरने का निश्चय किया। माता-पिता भी तैयार हो गए, पर शंखचूड़ ने उन्हें समझाया और कहा, "हो सकता है कि गरुड़ उन्हें नाग न जानकर छोड़ दे। सो, क्यों न वहां चलकर देखा जाय!"

यह बात जीमूतकेतु की समझ में आ गई। फिर भी उन्होंने कहा, "आग साथ लेकर चलना ठीक है। आप चलें, हम अभी आते हैं।" वे आग लेने यज्ञशाला की ओर लौटे और शंखचड़ रुधिर की बूंदों के सहारे आगे बढ़ा।

पक्षिराज मलयाचल की चोटी पर बैठे हुए अपनी चोंच से जीमूतवाहन के कलेवर के टुकड़े-टुकड़े नोच कर खा रहे। लेकिन जीमूतवाहन के कमल समान विकसित मुख पर विषाद की जरा-सी भी रेखा नहीं थी। वह तनिक भी विचलित नहीं हो रहे थे। पक्षिराज उनके शरीर का अधिकांश रुधिर पी चुके थे। उनका यह लोकोत्तर धैर्य देखकर पक्षिराज एक बार जरा आश्चर्य में पड़ गए। वह सोचने लगे कि आखिर यह प्राणी दर्द के मारे रोता-

चिल्लाता क्यों नहीं है ? ऐसा पहले तो कभी नहीं हुआ। जरूर कोई-न-कोई विशेष बात है। यह सोचते-सोचते वह जरा देर रुक गए। उनके मन में दया का संचार होने लगा। उन्होंने खाना छोड़कर पूछा, "तुम कौन हो ?"

पक्षिराज को इस प्रकार रुकते देखकर जीमूतवाहन बोले, "गरुड़राज, आपने भोजन क्यों बन्द कर दिया ? अभी तो मेरे शरीर में मांस बाकी है और शिराओं में रक्त भी शेष है। आप संकोच न करें। अपना भोजन शांतिपूर्वक करें।"

मनुष्य की वाणी सुनकर गरुड़ एकदम रुक गए। वह मन में कहने लगे कि अरे, यह तो महा अनर्थ हो गया दीखता है। आज तो अपनी भूख की ज्वाला शांत करने में नाग के बजाय कोई मनुष्य आ गया दीखता है। यह सोचकर उन्होंने पूछा, "मैंने चोंच से तुम्हारा रक्त निकाला है, परन्तु तुमने तो अपने धैर्य से मेरा हृदय ही निकाल लिया है। मैं जानना चाहता हूँ कि तुम हो कौन ?"

जीमूतवाहन ने जवाब दिया, "पहले आप अपनी भूख शांत करें फिर मेरा परिचय सुनना।"

इतने में शंखचूड़ वहां आ पहुँचा। पक्षिराज के पास

पहुँचकर उसने बड़ी नम्रता से कहा, "हे पक्षिराज! आज आपसे बड़ा अनर्थ हो गया। आपने नाग के धोखे में एक मनुष्य का वध कर डाला। आपका आहार तो मैं था। इसे छोड़ दो। मुझे खाओ। मुझे वासुकि ने आपके लिए भेजा है। आप जिसे अपने आहार के लिए उठा लाये हैं वह तो विद्याधर कुलशेखर राजकुमार जीमूतवाहन हैं।"

शंखचूड़ का कथन सुनकर वैनतेय बड़े खिन्न हुए। वह पश्चाताप की आग में जलने लगे। इतने में जीमूतकेतु आदि भी वहां आ पहुँचे। उन्हें आया जान जीमूतवाहन ने शंखचूड़ से कहा, "मुझे चादर से ढककर पकड़े रहो, नहीं तो मेरी दशा देखकर ये लोग प्राण त्याग देंगे।"

जब जीमूतकेतु, उनकी पत्नी और मलयवती विलाप करने लगे तो गरुड़ और भी लज्जित हुए और उन्होंने जल मरना ही ठीक समझा। पर कुमार ने कहा, "यह विचार छोड़ दो। यह पाप का प्रायश्चित नहीं है।"

तब गरुड़ घुटने टेक और हाथ जोड़कर कुमार के पास बैठ गया और बोला, "महात्मा, आप कौन हैं?"

कुमार ने कहा, "कुछ देर रुको। मेरे माता-पिता आये हैं। इन्हें प्रणाम कर लूं।" गरुड़ को कुमार के पास इस प्रकार बैठे देखकर माता-पिता ने बेटे की कुशल समझी

पर जब वे उठने लगे तो मूर्च्छित हो गए। यह देखकर वे लोग भी अचेत हो गए। चेत आने पर माँ ने गरुड़ से कहा, "हे निर्दयी ! तूने मेरे पुत्र की क्या दशा कर डाली !" कुमार बोले, "मां, यह सब मैंने ही किया है। यह शरीर पहले भी ऐसा ही था। सदा वीभत्स दिखाई देनेवाले शरीर में, जो मेदा, मज्जा, मांस, रक्त और हड्डियों का ढेर है, शोभा कहाँ है ?"

गरुड़ ने जब ये उत्तम वचन सुने तो वह अपने को नरक की आग में जलता हुआ समझने लगे। वह कुमार से बोले, "हे राजकुमार, आज अज्ञातरूप में मुझसे एक निरीह और पवित्र प्राणी की हत्या हो गई। इस पाप से मुक्ति पाने का कोई प्रायश्चित बतलाइये। मैं पश्चात्ताप की व्यथा से पीड़ित हूँ।"

राजकुमार जीमूतवाहन बोले, "हे गरुड़, सर्वभूत दया से बढ़कर कोई प्रायश्चित नहीं है। अहिंसा से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। आपसे हो सके तो इन्हींका अनुष्ठान करें।"

जीमूतवाहन के इस कथन का वैनतेय पर बड़ा असर हुआ। उसी क्षण उन्होंने निश्चय किया कि वह आगे से नाग-संहार का क्रूर कर्म एकदम बंद कर देंगे। गरुड़ की इस प्रतिज्ञा से सारे नाग-कुल को बड़ा संतोष

हुआ। उन्होंने जीमूतवाहन का बड़ा उपकार माना।

इधर जीमूतवाहन और पक्षिराज का यह संवाद हो रहा था और उधर अपने पति की हालत देखकर राजकुमारी मलयवती की जो दशा हो रही थी, वह किसीसे कही नहीं जा सकती थी। शोक के मारे वह अपने विवेक को खो बैठी थी। जीमूतकेतु भी सन्न-से खड़े यह सारा व्यापार देख रहे थे कि कुमार की पीड़ा बढ़ने लगी। मृत्यु पास आई जानकर उन्होंने माता-पिता को अंतिम प्रणाम किया। वे रोने लगे। शंखचूड़ भी कुमार के साथ मरने को तैयार हो गया। गरुड़ तो शोकाकुल थे ही। इतने में विलाप करती हुई माँ ने इन्द्र से अमृत-वर्षा करने की प्रार्थना की। गरुड़ को भी अमृत का ध्यान आ गया। वह अमृत-वर्षा के लिए उड़ गए। शंखचूड़ ने जीमूतकेतु के कहने पर चिता तैयार की। तभी मलयवती ने हाथ जोड़कर गौरी से प्रार्थना की, "भगवती गौरी, आपने आशीर्वाद दिया था – तेरा पति विद्याधरों का चक्रवर्त्ती राजा होगा। सो आपके वे वचन मिथ्या हो गए।"

इतने ही में भगवती गौरी वहाँ प्रकट हो गईं। उन्होंने अपने कमंडलु से जल लेकर कुमार जीमूतवाहन पर छिड़क दिया। कुमार जी उठे। सबने गौरी की

चरण-वन्दना की।

उधर पक्षिराज गरुड़ ने नागों की हड्डियों पर अमृत बरसाकर सारे मृत-नागों को पुनर्जीवित कर दिया।

गौरी ने प्रसन्न होकर विद्याधरों का चक्रवर्त्ती राजा बनाने के लिए कुमार जीमूतवाहन का राजतिलक किया और उन्हें उपहार में स्वर्ण-रथ, श्वेत वरुणेंद्र श्याम घोड़े और अनिंद्य सुन्दरी मलयवती को अर्पित किया।

इस प्रकार समस्त नाग-कुल के साथ शंखचूड़ की प्राण-रक्षा हुई और उसका कल्याण हुआ।

'मंडल' द्वारा प्रकाशित प्राप्य साहित्य

आत्मकथा (गांधीजी) ५)
प्रार्थना-प्रवचन २ भाग „ ५॥)
गीता-माता „ ४)
पंद्रह अगस्त के बाद १॥), २)
धर्मनीति „ १॥), २)
द० अफ्रीका का सत्याग्रह ३॥)
मेरे समकालीन „ ५)
आत्म-संयम „ ३)
गीता-बोध „ ॥)
अनासक्तियोग „ १॥)
ग्राम-सेवा „ ।=)
मंगल-प्रभात „ ।=)
सर्वोदय „ ।=)
नीति-धर्म „ ।=)
आश्रमवासियों से „ ।=)
हमारी मांग „ १)
सत्यवीर की कथा „ ।)
संक्षिप्त आत्मकथा „ १) १॥)
हिंद-स्वराज्य „ ॥।)
अनीति की राह पर „ १)
बापू की सीख „ ॥)
गांधी-शिक्षा (तीन भाग)„ १=)
आज का विचार (दो भाग) ॥।)
ब्रह्मचर्य (दो भाग) „ १॥।)
गांधीजी ने कहा था ३ भाग ॥।)
शान्ति-यात्रा (विनोबा) १॥)
विनोबा के विचार : २ भाग ३)
गीता-प्रवचन „ १),१॥)
जीवन और शिक्षण „ २)
स्थितप्रज्ञ-दर्शन „ १)
ईशावास्यवृत्ति „ ॥।)
ईशावास्योपनिषद „ =)
सर्वोदय-विचार „ १=)
स्वराज्य-शास्त्र „ ॥)
गांधीजी को श्रद्धांजलि „ ।=)

भूदान-यज्ञ (विनोबा) ।)
राजघाट की संनिधि में ॥=)
विचार-पोथी „ १)
सर्वोदय का घोषणा-पत्र„ ।)
जमाने की माँग „ =)
मेरी कहानी (नेहरू) ८)
„ संक्षिप्त „ २॥)
हिन्दुस्तान की समस्याएँ„ २)
लड़खड़ाती दुनिया „ २)
राष्ट्रपिता „ २)
राजनीति से दूर „ २)
हमारी समस्याएँ (१ भाग) ॥।)
विश्व-इतिहास की झलक २१)
सं० हिन्दुस्तान की कहानी ५)
नया भारत „ ।)
आजादी के आठ साल „ ।)
गांधीजी की देन (रा० प्र०) १॥)
गांधी-मार्ग „ =)
महाभारत-कथा (राजाजी) ५)
कुब्जा-सुन्दरी „ २)
शिशु-पालन „ ॥)
मैं भूल नहीं सकता „ २॥)
कारावास-कहानी (सु. नै.) १०)
गांधी की कहानी (लु० फि०) ४)
भारत-विभाजन की कहानी ४)
बापू के चरणों में २॥)
इंग्लैंड में गांधीजी २)
बा, बापू और भाई ॥)
गांधी-विचार-दोहन १॥)
सर्वोदय-तत्व-दर्शन ७)
सत्याग्रह-मीमांसा ३॥)
बुद्ध-वाणी (वियोगी हरि) १)
सन्त-सुधासार „ ११
श्रद्धाकरण „ १)
अयोध्याकाण्ड „ १

'संस्कृत साहित्य-सौरभ'

की

पुस्तकें

१. कादम्बरी
२. उत्तररामचरित
३. वेणी-संहार
४. शकुन्तला
५. मृच्छकटिक
६. मुद्राराक्षस
७. नलोदय
८. रघुवंश
९. नागानन्द
१०. मालविकाग्निमित्र
११. स्वप्नवासवदत्ता
१२. हर्ष-चरित
१३. किरातार्जुनीय
१४. दशकुमार चरित : भाग १
१५. दर्शकुमार चरित : भाग २
१६. मेघदूत
१७. विक्रमोर्वशी
१८. मालतीमाधव
१९. शिशुपाल वध
२०. कुमाचरित
२१. बुद्ध-रसंभव
२२. महावीर-चरित
२३. रत्नावली
२४. पंचरात्र

मूल्य प्रत्येक का छः आना

सस्ता साहित्य मण्डल

छः आना